दिव्यध्वनि : मुख से या सर्वांग से ?

तीर्थंकर भगवंतों के दिव्य उपदेश द्वारा भव्य जीव सम्यग्ज्ञान प्राप्त करते हैं। तीर्थंकरों का यह उपदेश दिव्यध्वनि कहलाता है, जो अरहंत के अष्ट प्रातिहार्यों में से एक है। यह दिव्यध्वनि ही भगवान और आप्त का अंतर करती है। जिन वीतराग, सर्वज्ञ की दिव्यध्वनि खिरती है, उपदेश होता है, वे आप्त कहलाते हैं, तथा जिन वीतराग, सर्वज्ञ की दिव्यध्वनि नहीं खिरती, वे भगवान कहलाते हैं।

यहां प्रकृत में विचार अरहंत प्रभु की दिव्यध्वनि पर करना है। यह दिव्यध्वनि किस प्रकार होती है। अनेक लोगों का मानना है कि दिव्यध्वनि अरहंत भगवान् के सर्वांग से होती है, परन्तु आगम प्रमाणों से यह ज्ञात होता है कि दिव्यध्वनि अरहंत के मुख से होती है, सर्वांग से नहीं। इसके उल्लेख इस प्रकार हैं:

तिलोयपण्णत्ति 1/90:

वोच्छामि सयलभेदे भव्वजणाणंद-पसर-संजणणं ।

जिण-मुह-कमल-विणिग्गय-तिलोयपण्णत्ति-णामाए ॥९०॥

अर्थ: भव्यजनों को आनन्द के प्रसार का उत्पादक और **जिनभगवान् के मुखरूपी कमल से** निर्गत यह त्रिलोकप्रज्ञप्ति नामक ग्रन्थ कहता हूँ॥ ९०॥

राजवार्तिक ७/१३२/१०/१९/२/

सकलज्ञानावरणसंशयाविर्भूतातिन्द्रियकेवलज्ञान: **रसनोपष्टम्भमात्रादेव वक्तृत्वेन** परिणत:। सकलान् श्रुतविषयानर्थानुपदिशति।

अर्थ: सकल ज्ञानावरण के क्षय से उत्पन्न अतीन्द्रिय केवलज्ञान **जिह्वा इन्द्रिय के आश्रय मात्र से वक्तृत्व रूप परिणत होकर** सकलश्रुत विषयक अर्थों के उपदेश करता है।

पद्मपुराण सर्ग ४६

एवं भगवतो **वक्त्रकमलान्निर्गतं** वचः |

मधु पीत्वा नरा: केचिद्गगनाम्बरतां गता: || ६१ ||

अर्थ: इस प्रकार **भगवान के मुखकमल से निकले हुए वचनरूपी** मकरन्द को पीकर कितने ही मनुष्य निर्ग्रन्थ अवस्था को प्राप्त हुए और हीन शक्ति को धारण करने वाले कितने ही लोग गृहस्थधर्म को प्राप्त हुए सो ठीक ही है क्योंकि कर्मोदय के कारण सब एक समान क्रिया के धारक नहीं होते || ६१ ||

पद्मपुराण सर्ग ५४

तस्माद् भोगं भुवनविकटं भोक्तुकामेन कृत्य: |
श्लाघ्यो धर्मो **जिनवरमुखादुद्गत:** सर्वसार: |
अर्थ: इसलिए जो भव्य संसार में उत्तम भोग भोगना चाहता है उसे **जिनेन्द्रदेव के मुखारविन्द से उदित** सर्वश्रेष्ठ प्रशंसनीय धर्म का पालन करना चाहिए । क्योंकि भोगों का नश्वर संगम तो दूर रहा वह इस धर्म के प्रभाव से सूर्य से भी अधिक उज्ज्वल मोक्ष को प्राप्त कर लेता है ।। ८०॥

पद्मपुराण सर्ग ७८
धर्मशुश्रुषया युक्तचित्ता: सुखं शुश्रुबुर्धर्ममेवं **मुनीन्द्रास्यतो निर्गतं** |
अर्थ: तदनन्तर धर्मश्रवण करने की इच्छा से सब यथायोग्य पृथिवी पर बैठ गये और सावधानचित्त होकर **(अनंतवीर्य केवली) मुनिराज के मुख से निकले हुए** धर्म का इस प्रकार श्रवण करने लगे

पद्मपुराण सर्ग ८५
जिनवरवदनविनिर्गतमुपलभ्य शिवैकदानतत्परमतुलम् |
निर्जितरविरुचिसुकृतं कुरुत यतोयात निर्मलं परमपदम् || १७५ ||
अर्थ: हे भव्यजनो ! जो **श्रीजिनेन्द्र देव के मुखारविन्द से** प्रकट हुआ है तथा मोक्ष के देने में तत्पर है ऐसे अनुपम जिनधर्म को पाकर सूर्य की कान्ति को जीतने वाला पुण्य संचय करो जिससे निर्मल परम पद को प्राप्त हो सको ॥१७५॥

धवल पुस्तक ३, पृष्ठ २६
एदं वयणमसच्चत्तणं किं ण अल्लियदि त्ति भणिदे असच्चकारणुम्मुक्क**जिणवयणकमलविणिग्गयत्तादो**।
अर्थ: असत्य बोलने के कारणों से रहित **जिनेन्द्रदेव के मुखकमल से निकले हुए ये वचन** हैं, इसलिये इन्हें अप्रमाण नहीं माना जा सकता ।

धवल पुस्तक ५, पृष्ठ १९४
पंचसु भावेसु एसो को भावो त्ति पुच्छिदे ओदइओ भावो त्ति **तित्थयरवयणादो दिव्वज्झुणी विणिग्गया** ।
अर्थ: पांच भावों में से यह कौन-सा भाव है? ऐसा पूछने पर यह औदयिक भाव है, इस प्रकार **तीर्थंकर के मुख से दिव्यध्वनि निकली है** ।
(वयण याने संस्कृत भाषा में 'वदन'; जिसका अर्थ होता है - मुख)

धवल पुस्तक 6, पृष्ठ 449
असच्चकारणसव्वविज्जुत्त**जिणवयणविणिग्गयस्स वयणस्स** अप्पमाणत्तविरोहादो।

अर्थ: असत्य के समस्त कारण से रहित **जिनेन्द्र के मुख से निकले हुए वचन** का अप्रमाणत्व से विरोध है।

धवल पुस्तक 7, पृष्ठ 148

जत्थ पुण **जिणवयणविणिग्गयं** सुत्तमत्थि ण तत्थ एदेसिं पमाणत्तं।

अर्थ: जहां **जिन भगवान के मुख से निर्गत सूत्र** हैं, वहां इनको (अन्य व्याख्यान को) प्रमाणता नहीं होती।

महापुराण/२३/६९:

दिव्यमहाध्वनिरस्य **मुखाब्जान्मे**घरवानुकृतिर्निरगच्छत् ।

भव्यमनोगतमोहतमोघ्नन् अद्युतदेष यथैव तमोरि।:६९।

अर्थ: भगवान् के मुखरूपी कमल से बादलों की गर्जना का अनुकरण करने वाली अतिशययुक्त महादिव्यध्वनि निकल रही थी और वह भव्य जीवों के मन में स्थित मोहरूपी अंधकार को नष्ट करती हुई सूर्य के समान सुशोभित हो रही थी।६९।

महापुराण/२४/८३:

स्फुरद्गिरिगुहोद्भूतप्रतिश्रुद् ध्वनिसंनिभ:।

प्रस्पष्टवर्णो निरगाद् ध्वनि: **स्वायम्भुवान्मुखात्** ।८३।

अर्थ: जिसमें सब अक्षर स्पष्ट हैं ऐसी वह दिव्यध्वनि **भगवान् के मुख से** इस प्रकार निकल रही थी जिस प्रकार पर्वत की गुफा के अग्रभाग से प्रतिध्वनि निकलती है।८३।

हरिवंश पुराण/५८/३:

तत्प्रश्नान्तरं घातु**श्चतुर्मुख विनिर्गता।**

चतुर्मुखफला सार्था चतुर्वर्णाश्रमाश्रया।३।

अर्थ: गणधर के प्रश्न के अनन्तर दिव्यध्वनि खिरने लगी। **भगवान् की दिव्यध्वनि चारों दिशाओं में दिखने वाले चारमुखों से निकलती थी**, चार पुरुषार्थ रूप चार फल को देने वाली थी, सार्थक थी।

गोम्मटसार जीवकाण्ड 728:

वीरमुहकमलणिग्गयसयलसुयग्गहणपयडणसमत्थं |

णमिऊण गोदममहं सिद्धांतालावमणुवोच्छं ||

अर्थ: **वर्धमान स्वामी के मुखरूपी कमल से निकले** सकलश्रुत को ग्रहण और प्रकट करने में समर्थ गौतम स्वामी को नमस्कार करके सिद्धांतालाप को कहूँगा |

गोम्मटसार जीवकाण्ड/जीवतत्त्व प्रदीपिका टीका/ 356:
चतुर्ज्ञानसप्तर्धिसंपन्नगणधरदेवै: **तीर्थंकरमुखसरोजसंभूतसर्वभाषात्मकदिव्यध्वनि-**
श्रवणावधारितसमस्तशब्दार्थै..:
अर्थ: चार ज्ञान और सात ऋद्धियों से संपन्न गणधरदेव ने **तीर्थंकर के मुख कमल से उत्पन्न सर्वभाषामयी दिव्यध्वनि** को सुनकर...

ज्ञानार्णव, सर्ग 38, श्लोक 104
मन: कृत्वा सुनिष्कम्पं तां विद्यां पापभक्षिणीम्।
स्मर सत्त्वोपकाराय या जिनेन्द्रै: प्रकीर्तिता॥
अर्थ: ...वह विद्या यह है "ॐ **अर्हन्मुखकमलवासिनि** पापात्मक्षयंकरि श्रुतज्ञानज्वालासहस्रप्रज्वलिते सरस्वति मत्पापं हन हन.... - ये पापभक्षिणी विद्या के अक्षर हैं।

नियमसार टीका श्लोक २:
वाचं वाचंयमीन्द्राणां **वक्त्रवारिजवाहनाम्** ।
वन्दे नयद्वयायत्तवाच्यसर्वस्वपद्धतिम् ॥२॥
अर्थ: जिनदेवों का मुखकमल जिसका वाहन है और दो नयों के आश्रय से सर्वस्व कहने की पद्धति है उस वाणी की मैं वंदना करता हूं ।

सिद्धान्तसार दीपक, १६/१०२, भट्टारक सकलकीर्ति आचार्य
एष ग्रन्थवरो **जिनेन्द्र मुखज:** सिद्धान्तसारादिक-
दीपोनेकविधस्त्रिलोकसकलप्रद्योतने दीपक: ।...
अर्थ: यह सिद्धान्तसार दीपक नाम का ग्रन्थ अर्थ की अपेक्षा **श्रीजिनेन्द्र के मुख से समुद्भूत** है, विविध प्रमेयों का वर्णन करने से अनेक प्रकार का है.....

इसके अलावा जिन्होंने स्वयं सीमन्धर तीर्थंकर से साक्षात् दिव्यध्वनि श्रवण की थी एवं जो सर्वमान्य आचार्य हैं ऐसे आचार्य श्री कुन्दकुन्द देव के शब्दों में देखिये:

नियमसार गाथा 8:
तस्स **मुहुग्गदवयणं** पुव्वावरदोसविरहियं सुद्धं ।

आगममिदि परिकहियं तेण दु कहिया हवंति तच्चत्था ॥ ८ ॥

अर्थ: उनके मुख से निकली हुई वाणी जो कि पूर्वापर दोष रहित और शुद्ध है, उसे आगम कहा है और उसके द्वारा तत्त्वार्थ कहे गए हैं ।

पंचास्तिकाय गाथा 2:

समणमुहुग्गदमट्ठं चदुगदिविणिवारणं सणिव्वाणं।

एसो पणमिय सिरसा समयमिणं सुणह वोच्छामि ॥२॥

अर्थ: श्रमण (सर्वज्ञ-वीतराग महाश्रमण) के मुख से निकले हुए अर्थमय, चतुर्गति का निवारण करनेवाले, निर्वाण सहित इस समय को शिरसा प्रणामकर मैं इसे कहूँगा, तुम सुनो !

यही मान्यता पिछले कई हजार वर्षों से चलती आ रही है। पूर्वकालीन कवियों ने भी अपनी स्तुतियों-पूजाओं में यही कहा है कि दिव्यध्वनि मुख से होती है। जैसे-

शारदा-अष्टक, प. बनारसीदासजी

मुख ओंकार धुनि सुनि अर्थ गणधर विचारै ।

रचि आगम उपदिसे भविक जीव संशय निवारै ॥

सूत्रपाहुड टीका / प. जयचंदजी छाबड़ा

जिनवर की ध्वनि मेघध्वनिसम मुख तैं गरजे ।

गणधर के श्रुति भूमि वरषि अक्षर पद सरजै ॥

इष्ट छत्तिसी, भैया भगवतीदासजी:

तरु अशोक के निकट में, सिंहासन छविदार।

तीन छत्र सिर पर लसैं, भामंडल पिछवार ॥

दिव्यध्वनि मुखतैं खिरे, पुष्पवृष्टि सुर होय ।

ढोरैं चौंसठ चमर यक्ष, बाजे दुंदुभि जोय ॥

'नित पीज्यो धी धारी..' भजन, प. दौलतरामजी

वीर मुखारविन्दतै प्रगटी, जन्म-जरा गदटारी।

श्री चन्द्रप्रभ पूजन - जयमाला, प. वृन्दावनदासजी:

वानी जिनमुख सो खिरत सार, मनु तत्त्व प्रकाशन मुकुरधार।

सिद्धचक्र विधान, 8/337-339, प. संतलालजी
क्षुद्र तथा अक्षुद्रमय, सब भाषा परकाश ।
सुख **मुखते खिरकैं करै**, भर्म तिमित को नाश ॥ 337 ॥
कहने योग्य समर्थ सब, अर्थ करै परकाश ।
तुम वाणी मुखते खिरे, करै भरम-तम नाश ॥ 338 ॥
तुम वाणी नहीं व्यर्थ है, भंग कभी नहीं होय ।
लगातार **मुखते खिरे**, संशय तमको खोय ॥ 339 ॥

देव-शास्त्र-गुरु पूजन, मुनि विनम्रसागरजी
जिनमुख वाणी अति ही प्यारी, तीन लोक का सार भरा ।

समुच्चय पूजन - जयमाला, आ. विशुद्धमती माताजी
निर्गत **जिनमुख बीजस्वरूप**, धाम-खान जग-मंडनरूप ।

देव-शास्त्र-गुरु पूजन - जयमाला, आ. क्षमाश्री माताजी
जिनके मुख से ओंकार ध्वनि जग को उपदेश सुनाती है ।

नवदेवता पूजन- जयमाला, आ. राजश्री माताजी
श्रीजिनमुख से वाणी खिरती, द्वादशांग का रूप जो धरती ।

नवदेवता पूजन, प. गुलाबचंदजी
जिनवाणी है लोक में, भविजीवन आधार ।
तीर्थंकर मुख तें खिरी, सब जीवन हितकार ।।

हम जो सरस्वती देवी की पूजन करते हैं, उसका मंत्र भी देखिये:

ॐ ह्रीं श्री **जिनमुखोद्भव (या जिनमुखोद्भूत) सरस्वती** दैव्ये ....।
याने जिनेन्द्र भगवान के मुख से उत्पन्न सरस्वती देवी...।

दिव्यध्वनि : मुख से या सर्वांग से ?

प्रश्न: कहीं-कहीं आगम में यह भी आता है कि यह वाणी कण्ठ, तालु, ओष्ठ आदि के बिना ही खिरी ? तब यह मुख से नहीं हुई याने सर्वांग से हुयी ? इसके प्रमाण इस प्रकार है:

तिलोयपण्णत्ति/१/६२:
एदासिं भासाणं तालुवदंतोट्ठकंठवावारं।
परिहरियं एक्ककालं भव्वजणाणं दरभासो।६२।
अर्थ: तालु, दन्त, ओष्ठ तथा कण्ठ के हलन-चलन रूप व्यापार से रहित होकर एक ही समय में भव्यजनों को आनन्द करने वाली भाषा (दिव्यध्वनि) के स्वामी है।६२।

इसी प्रकार हरिवंश पुराण आदि में भी कहा गया है ।

उत्तर: यहां यह कहा है कि जैसे छद्मस्थों के शब्दों का व्यापार होता है, उस प्रकार दिव्यध्वनि का व्यापार कण्ठ, तालु आदि के बिना ही होता है। इन अवयवों के प्रयोग के बिना अरहंत के दिव्यध्वनि मुख से होती है। इसे ध्यान से देखें कि इसका अर्थ आचार्यों ने कहीं भी सर्वांग से ध्वनि खिरना नहीं किया है।

उपर्युक्त समाधान का सबसे प्रबल आगम प्रमाण है महापुराण का, जहां पर इस कथन को इस प्रकार दिखाया है-

महापुराण/१/१८४—
अपरिस्पन्दताल्वादेरस्पष्टदशनद्युते । :
स्वयंभुवो **मुखाम्भोजाज्ञाता** चित्रं सरस्वती ॥ १८४॥
अर्थ: उस समय **भगवान् के मुख से जो वाणी निकल रही थी** वह बड़ा ही आश्चर्य करने वाली थी क्योंकि उसके निकलते समय न तो तालु, कण्ठ, ओंठ आदि अवयव हिलते थे और न दांतों की किरण ही प्रकट हो रही थी।

इस एक ही श्लोक में आचार्य देव ने कहा है कि तालु, कण्ठ, ओंठ आदि अवयवों के हिले बिना ही मुख से वाणी याने उनकी दिव्यध्वनि होती है। इसका अर्थ सर्वांग से वाणी होना नहीं है।

प्रश्न: 'मुख-कमल से होना' यह आलंकारिक भाषा में कहा है । वास्तव में तो सर्वांग से दिव्यध्वनि होती है ।

उत्तर: आप ऊपर दिये आचार्य कुन्दकुन्द देव के वचनों को पढ़ें । इसमें गाथोक्त शब्द हैं- **'मुहुग्गदवयणं'** याने मुखगत वचन। इसमें कोई अलंकार का प्रयोग नहीं है। इन्हीं आचार्य के दूसरे प्रमाण के वचन देखिये- **'समणमुहुग्गदमट्ठं'** याने 'श्रमण के मुख से निकला अर्थ'। यहां बिना किसी अलंकार के सीधे-सीधे मुख से निकली/कही गयी वाणी - ऐसा अर्थ किया है। दूसरी बात यदि ऐसा ही अर्थ आचार्यों को इष्ट होता, तो कहीं तो वे इसका संकेत करते। परन्तु एक भी स्थान पर ऐसा प्रयोग नहीं पाया जाता है। इससे यह पता लगता है कि यह कोई आलंकारिक प्रयोग नहीं है, बल्कि वास्तविक कथन है।

दिव्यध्वनि : मुख से या सर्वांग से ?

प्रश्न: प. टोडरमलजी ने लिखा है कि 'परंतु सहज ही तैसें ही अघातिकर्मनि का उदयकरि तिनिका शरीररूप पुद्गल दिव्यध्वनिरूप परिणमैं है। ताकरि मोक्षमार्ग का प्रकाश हो है।' (मोक्षमार्गप्रकाशक/१/ग्रन्थ की सार्थकता) इसमें सर्वांग से दिव्यध्वनि खिरने जैसी बात है।

उत्तर: आपने पंडितजी का वचन ठीक से पढ़ा नहीं। प्रथम तो यह वचन ज्यूं का त्यूं ग्रहण योग्य नहीं है। क्योंकि शरीर के परमाणु ही ध्वनि रूप परिणमित नहीं हो सकते हैं। शरीर आहार वर्गणाओं का बना होता है एवं वचन भाषा वर्गणा के बने होते हैं। षट्खंडागम के वर्गणा खंड के अनुसार भाषा वर्गणा और आहार वर्गणाओं की रचना में अनन्त-अनन्त परमाणुओं का अंतर है। अत: शरीररूप पुद्गल परमाणुओं से वचनरूप/ध्वनिरूप कार्य होना अशक्य है। इस प्रकार का अभिप्राय सिद्धांतज्ञ पं. टोडरमलजी का हो भी नहीं सकता है। तब इस कथन का क्या तात्पर्य है ? यहां यह अभिप्राय है कि जैसे सूर्य के द्वारा बिना इच्छा ही प्रकाश का देना एवं अंधकार का दूर होना होता है, उसी प्रकार केवली भगवान के इच्छा के बिना ही अघाति कर्मों के उदय के निमित्त से एवं शरीर के निमित्त से (काय योग-वचन योग) दिव्यध्वनि का परिणमन होता है, पर सर्वांग से ही ध्वनि खिरती हो, ऐसा अर्थ इस वचन का नहीं है।

प्रश्न: क्षु. जिनेंद्रजी वर्णी द्वारा रचित जैनेन्द्र सिद्धांत कोष में भी लिखा है कि दिव्यध्वनि सर्वांग से होती है।

उत्तर: जो आगम प्रमाण जैनेन्द्र सिद्धांत कोष में प्रस्तुत हैं, उनमें से एक में भी ऐसा नहीं कहा है कि दिव्यध्वनि सर्वांग से होती है। वर्णीजी ने भाग ३ में दिव्यध्वनि शीर्षक के अंतर्गत ऐसा कहा है कि 'दिव्यध्वनि मुख से नहीं होती (भाग ३/पृ.४३१) तथा दिव्यध्वनि मुख से होती है (भाग ३/पृ.४३१)' । इसमें जहां 'दिव्यध्वनि मुख से नहीं होती' - ऐसा कहा है, उसके लिए तिलोयपण्णत्ति की ऊपर कही हुई गाथा ही प्रस्तुत की है जिसमें कहा है – "तालु, कण्ठ, ओंठ आदि अवयवों के हिले बिना ही दिव्यध्वनि होती है ।" गाथा में सर्वांग से खिरने संबंधी एक शब्द भी नहीं कहा गया है । जब मुख से होती है उस समय तालु, कंठ आदि अवयव हिलते नहीं हैं । बस, इतना ही इस गाथा में कहा है जिससे स्पष्ट हो जाता है कि दिव्यध्वनि मुख से ही होती है ।

प्रश्न: इसके संबंध में आचार्यों के दो मत हैं, जैसे अन्य कई विषयों में पाया जाता है?

उत्तर: आचार्यों का तो इसमें एक ही मत स्पष्ट दिखाई दे रहा है । उपर्युक्त दिए गए प्रमाण पहली से लेकर बीसवी शताब्दी तक के हैं, जिसमें एक भी स्थान पर आचार्यों ने दो मतों का प्रयोग नहीं किया है । हम अपने पूर्वाग्रहों से एक अलग मत की स्थापना करना चाहें, तो यहाँ से दो मत भले ही प्रारम्भ हो सकते हैं । परन्तु वे कपोल-कल्पित ही होंगे, जैन नहीं ।

निष्कर्ष:

अत: उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि दिव्यध्वनि वास्तव में मुख के द्वारा होती है। परन्तु मुख से होती हुयी भी यह कण्ठ, तालु, ओष्ठ के व्यापार बिना ही होती है। इसे इस रूप में प्रमाण करना चाहिए।
यह विषय अप्रयोजनभूत है क्योंकि यह सम्यग्दर्शन, 7 तत्त्व, देव-शास्त्र-गुरु के सच्चे श्रद्धान आदि से संबंध नहीं रखता है - ऐसा भी मानकर इसे अनिर्णीत नहीं छोड़ देना चाहिए। क्योंकि सूत्र के दिखाए जाने पर भी यदि विपरीत अर्थ को छोड़कर हम सम्यक् अर्थ ग्रहण नहीं करते हैं, तो मिथ्यात्व का दोष उस ही समय से प्रारंभ हो जाता है। जैसा कि गोम्मटसार में कहा है–
सुत्तादो तं सम्मं दरिसिज्जंतं जदा ण सद्दहदि ।
सो चेव हवइ मिच्छाइट्ठी जीवो तदो पहुडि ॥ २८ ॥

अंतिम बात, ये और इसी प्रकार के अनेक विषय आगम से ही प्रमाणित होते हैं । इसमें हमारी-आपकी बुद्धि क्या कहती है, हमने क्या सुन रखा है आदि, वह मायने नहीं रखता है । इतनी सीधी-सी बात को मानने में हमारी क्या हानि है? जब इतनी स्पष्टता के साथ एक स्वर से सभी आगम-प्रमाण प्रस्तुत हैं फिर भी हम इसे स्वीकार नहीं करना चाहते हैं; क्या यह हमारी गाढ़ पक्षबुद्धि को प्रकट नहीं कर देता! फिर हम स्वयं को यह कहकर क्यों दिलासा देते हैं कि हम आगम-ग्राही हैं, सही बात स्वीकारने के लिए तैयार हैं? यदि आगम-ग्राही हैं तो खुले मन से पक्ष छोड़कर इसे स्वीकार करें ।
अत: पूर्वश्रुत व्याख्यानों का पक्ष छोड़कर समीचीन बात को ग्रहण करना चाहिए एवं गलत बात का निषेध करना चाहिए ।

विकास जैन
094066-82889
vikasnd@gmail.com